REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 1 | OCTOBER - 2018

भारत में समलैंगिकता–एक आलोचनात्मक मूल्यांकन

डॉ. राज कुमार
सहायक आचार्य, विधिसंकाय, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, (उ.प्र.)

सारांश

उच्चतम न्यायालय ने 6 सितम्बर 2018 को *नवतेज सिंह जौहर एवं अन्य बनामभारत संघ*[1] के वाद में दिये गये अपने निर्णय द्वारा भारतीय दण्ड संहिता की धारा 377 को उस सीमा तक असंवैधानिक घोषित कर दिया जिस सीमा तक यह दो वयस्कों के मध्य आपसी सहमति से एकांत में प्रकृति की व्यवस्था के विरुद्ध लैंगिक संभोग को अपराध मानती है तथा *सुरेश कुमार कौशल*[2] के बाद दिये गये अपने निर्णय को अस्वीकार कर दिया। सुरेश कुमार कौशल के वाद में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा *नाज फाउण्डेशन*[3]के वाद में दिये गये उस निर्णय को अस्वीकार कर दिया गया था जिसमें भी धारा 377 को उस सीमा तक असंवैधानिक घोषित कर दिया गया था जिस सीमा तक यह वयस्कों में आपसी सहमति से एकांत में प्रकृति की व्यवस्था के विरुद्ध लैंगिक संभोग को अपराध मानती है। सुरेश कुमार कौशल के निर्णय से समलैंगिक, उभय लिंगी एवं ट्रान्सजेन्डर समुदाय में घोर निराशा व्याप्त हो गयी थी तथा धारा 377 को असंवैधानिक घोषित करने के लिए याचिकायें दाखिल की गयी थीं। प्रस्तुत शोध पत्र में सम्बन्धित विषय के विभिन्न पहलुओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया गया है।

विधिक परिपेक्ष्य

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा 377 ''प्रकृति के विरुद्ध अपराध'' के विषय में उपबन्ध करती है जिसके अनुसार–जो कोई किसी पुरुष, स्त्री या जीव–जन्तु के साथ प्रकृति की व्यवस्था के विरुद्ध स्वेच्छया इन्द्रिय भोग करेगा, वह आजीवन कारावास से, या दोनों में से किसी भाँति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जायेगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।

इस धारा के उपबन्ध से स्पष्ट है कि मुख मैथुन, गुदा मैथुन एवं पशु–गमन प्रकृति की व्यवस्था के विरुद्ध अपराध की श्रेणी में आते हैं क्योंकि मुख, गुदा एवं पशु प्रकृति की व्यवस्था के अनुसार लैंगिक संभोग के लिए नहीं हैं। अन्य शब्दों में, शिश्न–योनि के संभोग के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का लैंगिक–संभोग प्रकृति की व्यवस्था के विरुद्ध अपराध होगा।

इस धारा के उपबन्ध से यह भी स्पष्ट है कि प्रकृति के विरुद्ध अपराध में सहमति का बचाव उपलब्ध नहीं है जबकि, बलात्संग जैसे अपराध के गठित होने में सहमति या इच्छा प्रासंगिक है अर्थात् सम्बन्धित पक्ष की सहमति या इच्छा के अभाव में ही बलात्संग का अपराध गठित होता है।

न्यायालय का अभिमत

धारा 377 की वैधता को *नाज फाउण्डेशन बनाम दिल्ली सरकार* के वाद में इस आधार पर चुनौती दी गयी थी कि सहमति के आधार पर

[1]उच्चतम न्यायालय, 6 सितम्बर 2018 ', http..//indiancanoon.org. पर उपलब्ध
[2]उच्चतम न्यायालय, 11 दिसम्बर 2013', http..//indiancanoon.org. पर उपलब्ध
[3]दिल्ली उच्च न्यायालय, 2 जुलाई 2009', http..//indiancanoon.org. पर उपलब्ध

वयस्कों में एकान्त में होने वाले लैंगिक कृत्यों को समाहित करने के कारण यह धारा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 19 एवं 21 द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों का उल्लँघन करती है।[4] इसके साथ ही यह भी सुझाव दिया गया था कि यह धारा केवल असहमति से होने वाले प्रकृति की व्यवस्था के विरुद्ध लैंगिकसंभोग तथा अवयस्क के विरुद्ध उसकी सहमति या असहमति से होने वाले प्रकृति की व्यवस्था के विरुद्ध लैंगिकसंभोग पर लागू होनी चाहिए।[5]

याचिकाकर्ता ने यह दावा किया था कि वह लोक–हित वाद के रूप में यह याचिका दाखिल करने के लिए इसलिए प्रेरित हुआ कि धारा 377 के आधार पर राज्य की ओर से समलैंगिक समुदाय के प्रति होने वाले विभेदकारी व्यवहार से एचआईवी/एड्स रोकथाम का प्रयास विफल हो रहा था जिसके परिणाम स्वरूप ऐसे समुदाय के लोग मौलिक अधिकारों से वंचित हो रहे थे तथा लोक एवं लोक प्राधिकारियों द्वारा शोषण एवं प्रताड़ना का शिकार हो रहे थे।[6] इस सम्बन्ध में यह सुझाव दिया गया कि सहमति युक्त वयस्कों में एकान्त में होने वाले लैंगिक कृत्यों को अपराध घोषित करने के कारण यह धारा पुलिस प्रताड़ना एवं शोषण के लिए हथियार के रूप में काम करती है।[7]

धारा 377 की प्रकृति के विषय में यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि यह परम्परागत ईसाई नैतिकता पर आधारित है जो लैंगिकसंभोग का उद्देश्य केवल सन्तानोत्पत्ति मानती है तथा सन्तानोत्पत्ति के अलावा अन्य उद्देश्य से किये जाने वाले लैंगिकसंभोग को प्रकृति की व्यवस्था के विरुद्ध देखती है।[8]

याचिकाकर्ता के तर्कों को स्वीकार करते हुए मुख्य न्यायाधीश अजित प्रकाश शाह एवं न्यायमूर्ति एस0 मुरलीधर की खण्डपीठ ने धारा 377 को उस सीमा तक अनुच्छेद 14, 15 एवं 21 का उल्लँघनकारी घोषित कर दिया जिस सीमा तक यह सहमतियुक्त वयस्कों में एकान्त में होने वाले लैंगिक कृत्यों को अपराध बनाती है और यह धारित किया कि धारा 377 का उपबन्ध सहमति के बिना लैंगिक कृत्यों तथा अवयस्क के विरुद्ध होने वाले लैंगिक कृत्यों को नियंत्रित करने के लिए यथावत् बना रहेगा। प्रत्येक व्यक्ति जिसने 18 वर्ष की आयु प्राप्त कर ली हो वयस्क माना गया।[9]

अनुच्छेद 14 के उल्लँघन के मुद्दे पर न्यायालय ने प्रेक्षित किया कि धारा 377 लोक के दायरे एवं एकान्त के दायरे में आने वाले कृत्यों के बीच में कोई अन्तर नहीं करती है। यह वयस्कों के बीच होने वाले सहमतियुक्त एवं बिना सहमति के कृत्यों में भी अन्तर नहीं करती है। सहमति युक्त वयस्कों में एकान्त में होने वाले लैंगिक कृत्य किसी को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचाते हैं। इस प्रकार, धारा 377 के अन्तर्गत सहमति, आयु एवं कृत्य की प्रकृति या किसी को होने वाली क्षति का अभाव जैसे प्रासंगिक तथ्यों को विचार में नहीं लिया गया है। एक विशिष्ट सामाजिक समूह या असुरक्षित अल्पसंख्यक समुदाय के प्रति हेय दृष्टि अनुच्छेद 14 के अन्तर्गत वर्गीकरण के लिए कोई वैध आधार नहीं है।[10]

अनुच्छेद 15 के उल्लँघन के मुद्दे पर न्यायालय ने धारित किया कि लिंग विभेद के विरुद्ध इस अनुच्छेद में प्रदत्त मौलिक अधिकार का उद्देश्य उस व्यवहार को रोकना है जो लोगों को इसलिए अलग करता है कि वे लिंग की सामान्य भूमिका के अनुरूप नहीं है।[11] अनुच्छेद 15 के अन्तर्गत लिंग विभेद के विरुद्ध प्रतिषेध स्वायत्तता एवं स्वयं निर्धारण का अधिकार प्रदान करता है जो व्यक्तिगत पसन्द पर जोर देता है।[12] धारा 377 सहमति से वयस्यकों में एकान्त में होने वाले लैंगिक कृत्यों को अपराध बनाकर जनता के एक वर्ग के साथ उनके लैंगिक अनुकूलन (Sexual Orientation) के आधार पर विभेद करती है जो कि अनुच्छेद 15 में विभेद के आधार पर प्रतिषेध का एक आधार है।[13]

---

[4]**तत्रैव, पृष्ठ–2, पैरा–1.**
[5]**तत्रैव.**
[6]**तत्रैव, पृष्ठ–6–7, पैरा–6.**
[7]**तत्रैव, पृष्ठ–7, पैरा–7.**
[8]**तत्रैव.**
[9]**तत्रैव, पृष्ठ–105, पैरा–132.**
[10]**तत्रैव, पृष्ठ–75, पैरा–91.**
[11]**तत्रैव, पृष्ठ–83, पैरा–99.**
[12]**तत्रैव, पृष्ठ–89, पैरा–108.**
[13]**तत्रैव, पृष्ठ–91–92, पैरा–113.**

गरिमा एवं एकांतता पर निर्णीत विदेशी निर्णयों तथा भारत में एकांतता की विधि के विकास को विचार में लेते हुए न्यायालय ने अनुच्छेद 21 में समाहित गरिमा एवं एकांतता के उल्लँघन के मुद्दे पर प्रेक्षित किया कि गरिमा के साथ रहने तथा एकांतता का अधिकार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के आयाम के रूप में मान्यता प्राप्त है। धारा 377 व्यक्ति की गरिमा को नकारती है तथा उसकी मूल पहचान को उसकी लैंगिकता के आधार पर अपराध बनाती है। इस प्रकार यह धारा अनुच्छेद 21 का उल्लँघन करती है।[14]

अनुच्छेद 14, 15 एवं 21 के उल्लँघन के मुद्दे पर स्थापित तथ्यों के प्रकाश में न्यायालय ने अनुच्छेद 19 के उल्लँघन के मुद्दे पर विचार करना अनावश्यक समझा।[15]

भारत संघ की ओर से, जो इस वाद में एक प्रत्यर्थी था, यह प्रतिवाद किया गया कि धारा 377 लोक नैतिकता, लोक स्वास्थ्य तथा स्वस्थ पर्यावरण के उद्देश्य को पूरा करती है।[16] यह प्रतिवाद इस आधार पर अमान्य कर दिया गया कि नैतिकता स्वमेव अनुच्छेद 14 एवं 21 द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रतिबन्धित करने के लिए एक वैध आधार नहीं हो सकती है। एक निश्चित वर्ग के प्रति लोक निन्दा या घृणा, किसी भी प्रकार से, एक संविधि की संवैधानिक वैधता को धारित में सहायक नहीं हो सकती है।[17]

धारा 377 को लोक स्वास्थ्य में एक बाधा के रूप में भी इस आधार पर धारित किया गया कि आपराधिक अनुशास्ति के अधीन होने के कारण समलैंगिकों के लैंगिक कृत्य छिपे रहते हैं[18] तथा यह आवश्यकता महसूस की गयी कि ऐसे कृत्यों को अपराध की परिधि से बाहर करके लोक स्वास्थ्य के मानकों को मजबूत किया जाना चाहिए जिससे कि समलैंगिकों की पहचान आसान हो सके तथा उन पर अच्छे से ध्यान दिया जा सके।[19]

समलैंगिकता की प्रकृति के विषय में न्यायालय ने धारित किया कि चिकित्सकों एवं मनोचिकित्सकों में लगभग एक राय यह है कि समलैंगिकता कोई बीमारी या मानसिक विकार नहीं है बल्कि, यह मानव लैंगिकता की एक अन्य अभिव्यक्ति है।[20]

दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा नाज फाउण्डेशन के वाद में दिये गये निर्णय के विश्लेषण से यह विदित है कि न्यायालय ने प्रत्येक वाद–बिन्दु पर सम्यक् प्रकार से विचार किया तथा यह निर्णय भारतीय आपराधिक विधि के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक निर्णय है।दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील हुई। *सुरेश कुमार कौशल बनाम नाज फाउण्डेशन*[21] के वाद में न्यायमूर्ति जी0एस0 सिंघवी एवं एस0जे0 मुखोपाध्याय की पीठ ने धारित किया कि धारा 377 असंवैधानिकता के दोष से ग्रस्त नहीं है तथा दिल्ली उच्च न्यायालय की खण्डपीठ द्वारा की गयी घोषणा विधिक रूप से पोषणीय (Sustainable) नहीं है।[22] यह धारा अपने सीधे–सीधे अर्थ एवं अपने विधिक इतिहास के प्रकाश में आयु एवं सहमति पर विचार किये बिना लागू होगी।[23] न्यायालय ने अपने निर्णय को इस आधार पर उचित ठहराया कि धारा 377 का निर्वचन करते समय दिल्ली उच्च न्यायालय की खण्डपीठ ने इस बात को नजर अंदाज कर दिया कि समलैंगिक एवं नपुंसक समुदाय देश की जनसंख्या का एक बहुत ही छोटा भाग है तथा पिछले 150 से ज्यादा वर्षों में 200 से भी कम लोग इस धारा के अन्तर्गत अपराध कारित करने के लिए अभियोजित किये गये हैं। ऐसी स्थिति में इसे संविधान के अनुच्छेद 14, 15 एवं 21 के अधिकारातीत नहीं घोषित किया जा सकता है।[24] इस तर्क के साथ ही न्यायालय ने इस विषय को विधायिका के विचारार्थ छोड़ दिया।[25]

---

[14]**तत्रैव, पृष्ठ–39–40, पैरा–48.**
[15]**तत्रैव, पृष्ठ–101, पैरा–126.**
[16]**तत्रैव, पृष्ठ–12–13, पैरा–13.**
[17]**तत्रैव, पृष्ठ–21–22, पैरा–24 (1).**
[18]**तत्रैव, पृष्ठ–51, पैरा–62.**
[19]**तत्रैव, पृष्ठ–72–73, पैरा–86.**
[20]**तत्रैव, पृष्ठ–55, पैरा–67.**
[21]**पूर्वोक्त संदर्भ संख्या 2.**
[22]**तत्रैव, पृष्ठ–97, पैरा–54.**
[23]**तत्रैव, पृष्ठ–77, पैरा–38.**
[24]**तत्रैव, पृष्ठ–83, पैरा–43.**
[25]**तत्रैव, पृष्ठ–97–98, पैरा–56.**

प्रामाणिक रूप से यह कहा जा सकता है कि न्यायालय द्वारा विधायिका के प्रति यहाँ असाधारण सम्मान दिखाया गया है जो कि उसके द्वारा किसी विधायन की संवैधानिकता पर पुनर्विचार करने के उसके संवैधानिक दायित्व का अभित्याग है। निःसन्देह इस निर्णय को उच्चतम न्यायालय के न्याय निर्णयन के इतिहास में एक अवरोध माना जा सकता है क्योंकि, यह भ्रान्तिपूर्ण एवं बेतुके तर्क पर आधारित है।

सुरेश कुमार कौशल के निर्णय के तुरन्त बाद समूह में इस निर्णय पर पुनर्विचार करने के लिए याचिकायें दाखिल की गयीं।[26] इन याचिकाओं को दाखिल करने के पीछे यह तर्क दिया गया कि इससे उन हजारों समलैंगिकों के प्रति अन्याय होने से रोका जा सकता है जो अभियोजन एवं पुलिस प्रताड़ना के संकट से पुनः घिर गये हैं[27]। किन्तु न्यायालय ने अपने निर्णय पर पुनर्विचार करने से इसलिए इन्कार कर दिया कि प्रश्नगत आदेश के साथ हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं दिखाई दे रहा है[28]।

पुनर्विचार याचिका अस्वीकार हो जाने पर क्यूरेटिव पेटिशन दाखिल की गयी[29]। किन्तु, जब क्यूरेटिव पेटिशन भी बहुत दिनों तक लम्बित रही तो धारा 377 को असंवैधानिक घोषित कराने के लिए अनेकों नयी याचिकायें दाखिल की गयीं। धारा 377 पर दाखिल सभी याचिकाओं को विचार के लिए संविधान पीठ के पास भेज दिया।

नवतेज सिंह जौहर बनाम भारत संघ[30] के वाद में मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा की अध्यक्षता वाली पाँच सदस्यीय संविधान पीठ ने मामले पर गम्भीरता से विचार करते हुए सर्वसम्मति से सुरेश कुमार कौशल के निर्णय को अस्वीकार कर दिया तथा धारा 377 को उन्हीं आधारों पर एवं उस सीमा तक असंवैधानिक घोषित कर दिया जिन आधारों पर एवं जिस सीमा तक नाज फाउण्डेशन के वाद में इसे असंवैधानिक घोषित किया गया था[31]।

अतः धारा 377 अब उस सीमा तक असंवैधानिक है जिस सीमा तक यह वयस्कों में आपसी सहमति से एकांत में प्रकृति की व्यवस्था के विरुद्ध लैंगिक संभोग को अपराध मानती है। किन्तु, सहमति के बिना किसी वयस्क अथवा सहमति या बिना सहमति के किसी अवयस्क के साथ प्रकृति की व्यवस्था के विरुद्ध लैंगिक संभोग तथा पशुओं के साथ कोई लैंगिक कृत्य अभी भी इस धारा के अन्तर्गत अपराध है।

न्यायाधीशों ने समलैंगिक, उभयलिंगी एवं ट्रान्सजेन्डर समुदाय के सन्दर्भ में कई महत्वपूर्ण बातें भी कहीं। मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा ने प्रेक्षित किया कि लैंगिक अनुकूलन एक जैविक तथ्य है जो प्राकृतिक है और व्यक्ति को वंशानुक्रम में प्राप्त होता है[32]। न्यायमूर्ति आर.एफ.नरीमन के अनुसार समलैंगिकता कोई मानसिक रोग नहीं है जो कि ''मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017'' में दी गयी मानसिक रोग की परिभाषा से स्पष्ट है[33]। न्यायमूर्ति नरीमन ने तो यह भी विचार व्यक्त किया कि केन्द्र सरकार इस निर्णय का लोक मीडिया के माध्यम से व्यापक प्रचार सुनिश्चित करने के लिए सभी जरूरी कदम उठायेगी[34]। न्यायमूर्ति इन्दू मल्होत्रा ने प्रेक्षित किया कि लैंगिक अनुकूलन अपरिवर्तनीय है क्योंकि यह किसी की पहचान का एक अन्तर्निहित गुण है जो किसी की इच्छा पर बदला नहीं जा सकता है[35]। न्यायमूर्ति इन्दू मल्होत्रा की राय में तो समलैंगिक, उभयलिंगी एवं ट्रान्सजेन्डर समुदाय एवं उनके परिवारों को सदियों तक सहन किये गये तिरस्कार एवं बहिष्कार के लिए बिलम्ब से मिलने वाले उपचार के लिए इतिहास क्षमा माँगने के दायित्व के अधीन है[36]।

---

[26] द हिन्दू, 21 दिसम्बर 2013 मुख्य पृश्ठ.

[27] तत्रैव पृश्ठ 11.

[28] पुनर्विचार याचिका सं. 41–45, 2014, 28 जनवरी 2014.

[29] द हिन्दू, 5 अप्रैल 2014 पृश्ठ 4.

[30] पूर्वोक्त सन्दर्भ सं. 1.

[31] तत्रैव, मुख्य न्यायाधी दीपक मिश्रा एवं न्यायमूर्ति ए.एम. खानविलकर का निर्णय, पैरा 253; न्यायमूर्ति आर.एफ. नरीमन का निर्णय पैरा 96 एवं 97; न्यायमूर्ति डी.वाई. चन्द्रचूण का निर्णय पैरा 156 तथा न्यायमूर्ति इन्दू मल्होत्रा पैरा 21.

[32] तत्रैव, मुख्य न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा का निर्णय पैरा, 253 (vii).

[33] तत्रैव, न्यायमूर्ति आर.एफ. नरीमन का निर्णय पैरा 72.

[34] तत्रैव, पैरा 98.

[35] तत्रैव, न्यायमूर्ति इन्दू मल्होत्रा का निर्णय पैरा 19 (i).

[36] तत्रैव, पैरा 20.

विश्व के विभिन्न देशों में स्थिति

इस विषय पर अध्ययन से स्पष्ट है कि समलैंगिकता विश्व के हर समुदाय में एवं हर काल में पाई गयी है। कहीं इसे प्रथा तो कहीं निषेध के रूप में देखा गया है[37] वैश्विक स्तर पर समलैंगिकता से सम्बन्धित विधियों में भी समय के साथ साथ परिवर्तन हुआ है तथा आज विश्व के अधिकांश देशों में सहमति से वयस्कों में होने वाले लैंगिक कृत्यों को अपराध की परिधि से बाहर कर दिया गया है। उदाहरण के लिए इंग्लैण्ड का ''बगरी एक्ट, 1563'', जो कि ब्रिटिश औपनिवेशिक देशों में समलैंगिकता को अपराध घोषित करने वाला चार्टर बना, आज पूरी तरह परिवर्तित हो गया है तथा ''सेक्सुअल आफेन्सेज एक्ट, 1967'' द्वारा सहमति से एकांत में 18 वर्ष की आयु प्राप्त व्यक्तियों में होने वाली समलैंगिकता को अपराध की परिधि से बाहर कर दिया गया है[38]

समीक्षा

नवतेज सिंह जौहर के वाद में दिया गया उच्चतम न्यायालय का निर्णय भारतीय विधि के इतिहास में एक ऐतिहासिक निर्णय कहा जा सकता है क्योंकि इससे तिरस्कृत एवं बहिष्कृत समलैंगिक, उभय लिंगी एवं ट्रान्सजेन्डर समुदाय को न्याय मिला है जो अनेकों प्रकार की प्रताड़ना झेल रहे थे तथा अपने मौलिक अधिकारों से वंचित थे। प्रकृति के विरुद्ध लैंगिक संभोग अपराध होने से यह समुदाय अपनी पहचान प्रकट करने से डरता था तथा सहज जीवन यापन नहीं कर पाता था।

दूसरी तरफ, सहमति के बिना किसी वयस्क अथवा सहमति या बिना सहमति के किसी अवयस्क के साथ प्रकृति की व्यवस्था के विरुद्ध लैंगिक संभोग तथा पशुओं के साथ किसी लैंगिक कृत्य को धारा 377 के अन्तर्गत अपराध की श्रेणी में रहने देना आपराधिक विधि के उद्देश्य के अनुरूप है।

डॉ. राज कुमार
सहायक आचार्य, विधिसंकाय, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, (उ.प्र.)

[37]होमोसेक्सुअलिटी, विकिपीडिया पर उपलब्ध.

[38]के.डी. गौड़, क्रिमिनल लाः केसेज एण्ड मटेरियल्स (6वाँ संस्करण 2009) पृश्ठ 564.